

काव्य में रस का महत्त्व



कु० संजू
शोधच्छात्रा, संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

काव्यशास्त्र में रस को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। आचार्य भरतमुनि ने सर्वप्रथम इस सिद्धान्त की स्थापना की और कहा कि रस के बिना कोई अर्थ प्रवृत्त नहीं होता है –

‘नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते’

आचार्य ने काव्यरूप वृक्ष में रस को बीच रूप में स्वीकार किया है—
यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्टं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेषु भावा व्यवस्थिता ॥¹

नाट्य-शास्त्र में गुण, दोष तथा अलङ्कारों का ग्रहण भी रस के आधार पर करने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार गुण, दोष अलङ्कार भी रसाश्रित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि आचार्य भरतमुनि ने गुण, दोष व अलङ्कार के प्रयोग की व्याख्या रस के आधार पर ही की है।

आचार्य उद्भट ने भी रस को काव्यात्मा प्रतिपादित किया है :–

**रसाद्यधिष्ठितं काव्यं जीवद्रूपतया यतः ।
कथ्यते तद्रसादीनां काव्यात्मत्वं व्यवस्थितम् ॥**

अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य के पक्षधर आचार्यों ने भले ही अलङ्कार के प्रति काव्यात्मभाव से विचार किया, तथापि रस के सर्वातिशायीं प्रभाव को किसी ने नहीं नकारा है। आचार्य उद्भट अलङ्कारवादी चिन्तक थे फिर भी उन्होंने रस की जीवद्रूपता को स्पष्टतः स्वीकारा है।

काव्य में रस ही सबसे प्रधान होता है। रस के साथ भाव, तदाभास, आदि का भी ग्रहण किया जाता है। यदि कवि रसादि के प्रति और उनके व्यञ्जक वर्ण, पद, वाक्य आदि के प्रति अधिक सावधान रहता है, तो उसका काव्य अपूर्व सौन्दर्य से मण्डित रहता है। उसमें नवीनता होती है कोई भी अर्थ पुनः कहने पर भी पुराना प्रतीत नहीं होता। जैसे कि रामायण और महाभारत में युद्ध आदि का वर्णन बार-बार आता है परन्तु रस के प्रति कवि के सावधान रहने से उन वर्णनों में नवीनता ही प्रतीत होती है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने रस की महत्त्वा को बतलाते हुए इसकी उपमा वसन्त ऋतु से दी है। जिस प्रकार पुष्प रहित, फल विहीन प्राचीन वृक्ष भी वसन्त के आगमन से नवीन रूप में परिवर्तित हो जाता है। अर्थात् वृक्षों में रक्तवर्ण के पल्लव से भरी हुई टहनियाँ हमारे प्यासे नेत्रों को तृप्त करती हैं तथा मञ्जरी का सौरभ रसिक मन को बलात् अपनी ओर खींच लेता है उसी प्रकार कवि काव्य में रस के द्वारा चमत्कार पैदा कर पुराने भावों में नवीनता भर देता

¹. भरत नाट्यशास्त्र 6 / 38

है। इसको निम्न प्रकार से कहा है –

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः ॥

‘अभिज्ञानशकुन्तलम्’ नामक नाटक जिसकी कथावस्तु तो पूर्व से ही ग्रहीत है। परन्तु कालिदास के रसयुक्त बना देने पर वह सर्वथा चमत्कार उत्पन्न करने वाली कृति हो गयी। जिसकी लोकप्रियता विश्वविख्यात है। यहाँ रस ही वह तत्त्व है जिसने पुरानी पड़ी नीरस कथावस्तु को भी आस्वाद योग्य बना दिया।

प्राचीन काल से असंख्य कवि हुए हैं और उन्होंने अनेक काव्यों की रचना करके काव्य के मार्ग को परिमित कर दिया है तथापि इस अपरिमित रस आदि के आश्रय से यह मार्ग अनन्तता को प्राप्त हो जाता हैं क्योंकि अनेक प्रकार के रस हैं, भाव है, रसाभाव है और भावाभास है, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि और भावशबलता है, इन सबके असंख्य विभाव, अनुभाव और व्यभिचारि भाव हैं, जिससे कि रस आदि का मार्ग अनन्त हो सकता है। इसी आशय को आनन्दवर्धन ने स्पष्ट किया –

युक्त्यानयानुसर्तव्यो रसादिर्बहुविस्तरः ।
मितोऽप्यनन्ततां प्राप्तः काव्यमार्गो यदाश्रयात् ॥

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रयोजनों में रसास्वादन को मौलिभूत प्रयोजन कहकर रस की प्रधानता को स्वीकार किया। काव्य के पढ़ने या सुनने के तुरन्त बाद ही रस के आस्वादन से समुत्पन्न और अन्य सब विषयों के परिज्ञान से शून्य अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। इन्होंने काव्यप्रकाश में रस के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। मम्मट ने स्वीकार किया है कि काव्य में रस ही मुख्य अर्थ है, उसी की सत्ता के कारण काव्य में काव्यत्व का जन्म होता है और इसी रस को अक्षुण्ण, अन्यून, पूर्ण एवं समग्र, बनाए रखने की बड़ी आवश्यकता होती है। यदि किसी भी साधन से रस के ऊपर आधात पहुँचा या न्यूनता आयी तो उन्हें दोष नाम से पुकारते हैं ‘मुख्यार्थहतिर्दोषो’ इस प्रकार काव्य में रस दोष को ही मुख्य दोष माना गया है। इन्होंने गुण को रस के नियत धर्म के रूप में भी स्वीकार किया है।²

आचार्य विश्वनाथ ने काव्य में रस को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए काव्य लक्षण में ‘रसात्मक’ पद को ग्रहण किया और कहा कि रसात्मक वाक्य ही काव्य हो सकता है, रस के अभाव में वाक्य का काव्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता है। इस प्रकार रस ही काव्य का स्वरूपाधायक तत्त्व है जबकि गुण अलड़कार तथा रीति आदि काव्य के मात्र उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं। रस की व्युत्पत्तिनिमित्तक अर्थ है ‘आस्वादयोग्यता’। चूँकि यह रसनीयता भाव, भावसन्धि, भावोदय, भावशबलता, भावाभास, भावशान्ति तथा रसाभाव में भी होती है। अतः वे सब भी रस शब्द से अध्याहृत किये जाते हैं।³ इस प्रकार रस शब्द मात्र स्वयं का वाचक नहीं प्रत्युत समूचे रस परिवार का उपलक्षणभूत है। इनके अतिरिक्त केशवमिश्र, आचार्य जगन्नाथ आदि आचार्यों ने भी रस को काव्यात्मा के रूप में स्वीकार किया है।

काव्य का प्रधान प्रयोजन रसास्वाद ही है अतः काव्य रचना में कवि की दृष्टि एक मात्र रस पर ही होनी चाहिए।

^{2.} ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥

^{3.} रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ
सन्धिः शबलता चेति सर्वेऽपि रसनाद्रसाः ॥ साहित्य दर्पण – 3.238